Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. IX, Issue No. XVIII, April-2015, ISSN 2230-7540

स्त्री विमर्श: एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

AN INTERNATIONALLY INDEXED PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. IX, Issue No. XVIII, April-2015, ISSN 2230-7540

स्त्री विमर्श: एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

Dr. Anju Srivastava*

Associate Professor, Department of Sociology, Arya Kanya Degree College, Prayagraj (UP)

सार – साहित्य के समाजशास्त्र के अन्तर्गत समाज से साहित्य के सम्बन्ध का विवेचन करने वाले दो तरह के विचारक हैं। एक वे हैं जो समाज के समझने के लिए साहित्य का उपयोग करते हैं और दूसरे साहित्य का समझने के लिए समाजशास्त्रीय दृष्टिकाण अपनाते हैं। वे महान साहित्य और लोकप्रिय साहित्य का समान महत्व देते हैं।

----------X----------

पुरुष की जन्मदात्री और उसके निर्माण विकास की उत्तरदायी होने के कारण स्त्री का स्थान पुरुष से ऊँचा है और इस उच्चता का बनाये रखने के लिए पुरुष से प्रतिद्वंद्विता करने की आवश्यकता नहीं है बल्कि अपने खोये हुए अधिकार का पुनः पाने की आवश्यकता है। पर यह सबसे बड़ी विडम्बना है कि पुरुष के जन्म का कारण स्त्रियाँ हैं और स्त्रियों के बहुआयामी शोषण और उनके साथ होने वाले अत्याचारों का कारण पुरुष ही हैं। सृष्टि में स्त्रियों की संख्या पुरुषों के समान होने के बाद भी उन्हें गौण स्थान दिया गया। इसलिए समकालीन लेखन में स्त्री विषयक दृष्टि विभिन्न बिन्दुओं पर केन्द्रित है--स्त्रियों के साथ होने वाले दोयम दर्जे का व्यवहार, स्वतंत्रता एवं अपने अधिकारों का पाने के लिए स्त्री-मुक्ति संघर्ष, स्त्री का वस्तु के रूप में समझने पर नारियों का हस्तक्षेप और अंत में स्त्री का मानवी या मानुषी समझना सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु है।

समकालीन नारीवादी चिन्तक आशारानी व्होरा लिखती हैं कि "सृष्टि रचना में स्त्री का योगदान पुरुष के समान योगदान से कहीं ज्यादा है, वह मानव की जन्मदात्री है, फिर संसार के विकास में उसका योगदान क्यों नगण्य रहा? आज भी समानता की भागीदारी केवल विधान के कागजों पर है, व्यवहार में इस आधी आबादी का स्थान अल्पसंख्यकों के समान ही है। ऐसा क्यों? इसी वजह से सवाल उठते हैं कि क्या वह अल्पसंख्यक है? क्या वह दूसरे दर्जे की इन्सान है? क्या वह केवल पुरुष-पति का मन बहलाव करने की वस्तु है? उसका अपना निजी अस्तित्व अपनी निजी पहचान कहाँ है? निजी तौर पर विश्व हित में उसकी काई अन्य भूमिका क्यों नहीं रही? ये बुनियादी सवाल आज विकसित, अविकसित विकासशील सभी देशों में समान रूप से उठाये जा रहे हैं।"[1]

माँ की भूमिका के रूप में स्त्री का स्थान श्रेष्ठ होने के बाद भी हमेशा उसे गौण स्थान ही मिलता रहाहै। उसे पुरुष से हर तरह से हीन समझा गया। नारी की पराधीनता एवं वेदना की कहानी कहते हुए नारीवादी चिन्तक का कहना है कि "नारी हमारे समाज का ऐसा प्राणी है जिसके पास जीवन से मृत्यु तक अपना घर नहीं होता है। पैदा होती है तो पिता की छत के नीचे एक परायी अमानत की भाँति या अतिथि के रूप में दिन गुजारती है, युवा होती है तोपति के घर एक सेविका की तरह जीवन व्यतीत करती है। बूढ़ी होती है तो बेटे की छत के नीचे एक अनुपयोगी वस्तु की तरह मौत की घड़ियाँ गिनती रहती है। पिता का घर, पति का घर और अन्त में बेटे का घर --ये तीनों घर जहाँ जीवन के पहले क्षण में उसकी आँख खुली और अंतिम क्षण में उसने प्राण त्याग दिये, काई भी उसका अपना नहीं था।"[2]

'औरत की कहानी' में सुधा अरोड़ा लिखती हैं कि "बेटी का विदा कर माँ-बाप भी उसकी जिम्मेदारी से मुक्त हो लेते हैं। जिस लड़की के हाथ में अपने पैरों पर खड़े होने लायक शिक्षा की डिग्री भी नहीं, माँ-बाप के घर की छत पर आसरा भी नहीं, उसके लिए यातना का यातना के रूप में न पहचानने के अलावा काई रास्ता नहीं रहता। किसी भी लड़की के लिए आर्थिक आत्मनिर्भरता अपने लिए आजादी और इज्जत कमाने की पहली शर्त है। अपने पाँव पर खड़े होने के लिए सबसे पहले जरूरी है शिक्षित होना। शिक्षा के द्वारा ही उसमें आस-पास की परिस्थितियों का और उसमें अपनी 'जगत' पहचान करने की समझ विकसित होती है।"[3]

आज की नारी घर की चहारदीवारी में बन्द रहना नहीं चाहती। वह समता की खोज में निकल पड़ी है। उसने अपने अस्तित्व की रक्षा की जिम्मेदारी स्वयं ही ले ली है। समानता के अधिकार का पाने के लिए विश्व भर में स्त्रियों द्वारा अनेक आन्दोलन किये

www.ignited.in

गये और अनेक नारी संगठन बनाये गये। इन संगठनों ने नारियों में जागरूकता लाने तथा अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने के अनेक प्रयास किये। पुरुष विचाराधारा का विरोध करते हुए डॉ. शरद सिंह का कहना है कि— "मैं पुरुष की विरोधी नहीं हूँ, किन्तु उस विचाराधारा की विरोधी हूँ, जिसके अन्तर्गत स्त्री का मात्र उपभोग की वस्तु के रूप में देखा जाता है। विचारों का यह पुरुष प्रधान परिवेश ही जिम्मेदार है, उन औरतों के जीवन की त्रासदियों के लिए जो अतीत में गणिकाएँ, देवदासियाँ अथवा नगरवधुएँ कहलाती थीं और वर्तमान में 'कालगर्ल', 'बार डांसर', और 'सेक्स वर्कर' कहलाती हैं। समाज में यदि देह व्यापार आज भी जीवित है तो मात्र इसलिए कि पुरुषों में स्त्री-देह का खरीदने की प्रवृत्ति आज भी मौजूद है। स्त्रियों से जुड़े इस अपराध का स्त्रियों की सहज उपलब्धता पर मढ़कर काई भी समाज दोषमुक्त नहीं हो सकता।"4

स्त्रियों ने अपनी कुशलता का प्रदर्शित करके यह दिखा दिया है कि वह किसी भी तरह पुरुषों से पीछे नहीं है अब स्त्रियाँ पुरुष प्रधान समाज और पितृसत्तात्मक परिवार की कुप्रथाओं और कुरीतियों का मानने के लिए बाध्य नहीं हैं दहेज प्रथा, बाल-विवाह जैसी कुप्रथाओं के उन्मूलन में वे स्वयं अपनी भूमिका निभा रही हैं और पारिवारिक दायित्वों के भार का वहन करने के साथ ही साथ समाजसेवा और राजनीति के क्षेत्र में भी अपना विशिष्ट योगदान दे रही हैं। स्त्रियों में जागरूकता लाने व उनके अस्तित्व की सुरक्षा के लिए विश्व भर में स्त्री-मुक्ति आन्दोलन चलाये जा रहे हैं। यह आन्दोलन शहरी क्षेत्रों में प्रभावी रहा है परन्तु ग्रामीण महिलाओं के संदर्भ में बहुत कम ही प्रयास हुए हैं। लेकिन भारतीय नारी मुक्ति आन्दोलन पाश्चात्य नारी मुक्ति आन्दोलन से भिन्न रहा है। आज भी महिलाओं के सामने केवल प्राप्त संवैधानिक अधिकारों के व्यवहारिक उपयोग का प्रश्न उपस्थित है, जिसके लिए आम स्त्रियों में व्यापक शिक्षा और जागृति लाने की आवश्यकता है।

पुरुष वर्ग से हमारी प्रतिद्वन्द्विता न पहले कभी थी और न आज है। उसकी भूमिका अधिकतर सहयोगी का ही रही है। चाहे स्त्री अधिकारों का प्रश्न हो या राष्ट्रीय कार्य में उसके सहयोग का, पुरुषों ने आगे बढ़कर स्त्रियों का आह्नान किया है और दोनों साथ-साथ सहकर्मी की सी भूमिका निभाते आ रहे हैं। आजादी की लड़ाई में इनकी साक्षी भूमिका सबसे बड़ा प्रमाण है। अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलनों में भी भारतीय महिलाओं की आवाज बराकर शामिल रही है। स्त्री के मानवीय अधिकारों की प्राप्ति की लड़ाई में, विश्वशान्ति के पक्ष में तथा समाज में समान भागीदारी के लिए भी वे अपनी आवाज बराबर उठाती रही है।

स्त्रियों की स्वतंत्रता एवं अस्तित्व पर प्रश्न उठाने वाली दार्शनिक चिन्तक सीमेन द बुआ एक नारीवादी चिन्तक भी हैं। अपने लेखन में सीम॑न द बुआ ने स्त्री के 'वस्तु रूप' का विराध किया है। इन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स' में स्त्रियों के विरुद्ध होने वाले अत्याचारों और अन्यायों का विश्लेषण करते हुए कहा है कि-"पुरुषों ने स्वयं का विशुद्ध चित् (Being) वित पजेमसद्धि 'स्वयं में सत' के रूप में परिभाषित किया है तथा स्त्रियों की स्थिति का अवमूल्यन करते हुए इन्हें 'अन्य' के रूप में परिभाषित किया है। इस प्रकार स्त्रियों का 'वस्तु' के रूप में निरूपित किया गया है।"[5]

जब तक स्त्रियाँ स्वयं अपनी प्रदत्त सामाजिक भूमिका के विरुद्ध प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त करेंगी तथा अपनी सामाजिक स्थिति के प्रति सहनशील बनी रहेंगी, तब तक वे स्वतंत्रता की अनुभूति नहीं कर सकेंगी तथा अत्याचार और शोषण से मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकेंगी। उनके लिए आवश्यक है कि वे घर के बाहर काम करके आर्थिक आत्मनिर्भरता या स्वायत्ता हासिल करें और साथ ही साथ बौद्धिक चुनौती का स्वीकार करते हुए अपने इतिहास का समझने का प्रयास करें तथा भविष्य की योजनाओं का भी निर्धारित करें। स्त्रियों की अवधारणा का स्पष्ट करने के लिए सम्प्रत्ययवाद या नामवाद जैसे सिद्धान्त उपयुक्त नहीं है। 'मार्डनवीमेनः ल लास्ट सेक्स' में डोरोथी पाकर ने लिखा है कि – "मैं उन पुस्तकों का न्यायप्रिय नहीं मानता जिसमें स्त्रियों का स्त्रियों के रूप में व्यवहृत किया गया है--मेरा मानना है कि सभी का पुरुषों और स्त्रियों दोनों का, मानव प्राणी के रूप में स्वीकार करना चाहिए।"[6]

समाजवादी विचारकों एवं नारीवादी चिन्तकों का पढ़ने के बाद यही पता चलता है कि स्त्री के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार विचारों में ही रचा बसा है। इसके लिए स्त्री का आज भी अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के लिए संघर्ष करना है। स्त्री के बारे में अपनी भूमिका में लता शर्मा अपने विचार व्यक्त करते हुए स्त्री का नया ही आवाहन दे रही हैं—"उनका सपाट आवाहन है मात्र वैचारिकता और लेखन के स्तर पर कुछ भी नया नहीं होगा--स्त्री सशक्तिकरण का संगठित होकर हर स्तर पर अपनी शक्ति का समुच्चय करके ही अपने अधिकारों का बलपूर्वक पाना होगा अन्यथा आरक्षण और न्याय के तमाशे चलते रहेंगे। काई उपलब्धि नहीं होगा।"[7] स्वस्थ्य समाज के विकास और अपने सांस्कृतिक परिवेश का देखते हुए हम कहना चाहते हैं कि--स्त्री पुरुष की प्रतिद्वन्द्वी न होकर सहयोगी हो, दोनों में 'सहजीवन' हो। सहजीवन का अर्थ, नारी का पुरुष में खो जाना नहीं है। इसका अर्थ है कि स्त्री-पुरुष का एक-दूसरे के स्वतंत्र व्यक्तित्व का सम्मान करते हुए एक-दूसरे का पाना। इन दोनों में भिन्नता और पूरकता की आवश्यकता है। इस संक्रमण काल में --नारी की

युगानुरूप परिभाषा की जाए। नारी का अपना अलग अस्तित्व हो, उपयोगिता हो, स्वाभिमान हो और सार्थकता हो जो पुरुष का मार्ग दर्शन करने वाला हो। पुरुष का सहयोगी हो--घर बाहर सभी क्षेत्रों में, संसार और समाज के बारे में दोनों की समान भागीदारी हो। नारी-पुरुष के सम्बन्धों का आधार मानवीय प्रेम, सम्मान और सहकार हो। यह आदान-प्रदान सहज और स्वस्थ्य हो। इससे समाज का अनेक विकृतियों से बचाया जा सकता है। इस प्रकार स्त्री स्वतंत्रता की सबसे अनिवार्य शर्त स्त्री-शिक्षा एवं आर्थिक स्वालम्बन है। जिससे स्त्री, समाज में अपना स्थान निर्धारित कर सकती है और अपने दायित्व से ऊपर उठकर 'मानवी' बन सकती है।

संदर्भ

1. आशारानी व्होरा-- 'औरत कल आज और कल', पृ. 184 प्रथम संस्करण, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली

2. गिरिराज शरण--संपा. नारी उत्पीड़न की कहानियाँ, पृ. 5, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली

3. सुधा अरोड़ा--औरत की कहानी, पृ. 197, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली

4. डॉ. सुश्री शरद सिंह--पिछले पत्रों की औरतें, पृ. 7, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली

5. सीम॑न द बुआ-द सेकेण्ड सेक्स, पृ. 45

6. डोरोपी पाकर--मॉडर्न वीमेन: द लास्ट सेक्स, पृ. 67

7. लता शर्मा-औरत अपने लिए, भूमिका से, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली

Corresponding Author

Dr. Anju Srivastava*

Associate Professor, Department of Sociology, Arya Kanya Degree College, Prayagraj (UP)

dr.anju.shri@gmail.com